# ब्रज का राज – भारतीय संगीत की देन

**रूकैय्या**
*संगीत विभाग*
*रघुनाथ कन्या महाविद्यालय, मेरठ*
*ईमेलः rukaiyarashid379@gmail.com*

Reference to this paper should be made as follows:

**रूकैय्या**

*ब्रज का राज – भारतीय संगीत की देन*

Artistic Narration 2021, Vol. XII, No. 2, Article No. 27 pp. 191-194

https://anubooks.com/artistic-narration-no-xii-no-2-july-dec.-2021/

***सारांश***

*भगवान श्रीकृष्ण की लीलाभूमि ब्रज का कण–कण संगीतमय है यह वह स्थली है जहाँ संगीत सम्राट तानसेन के गुरू स्वामी हरिदास जी ने संगीत के माध्यम से अपने इष्ट श्यामा–श्याम को रिझाकर न केवल उनके प्रत्यक्ष दर्शन करके संगीत की सार्थकता को प्रमाणित किया, वरन् अनेक रास रचनाओं को शास्त्रीय रागों और तालों में रचकर जिज्ञासुओं को संगीतामृत स्वरूप प्रदान किया।*

*जैसे ब्रज के कण–कण में संगीत व्याप्त है, ठीक वैसे ही शास्त्रीय संगीत के गायन क्षेत्र में ब्रजभाषा व्याप्त है। हमारे पूज्य आचार्य जो कि भगवान कृष्ण के अनन्य उपासक थे श्रीमद भागवत पुराण से प्रेरणा, अष्टछाप से गायन, अनुभवी कलाशिल्पियों से अभिनय, रससम्राट रसिकशिरोमणि भगवान कृष्ण के जीवन वृत्त से रस ग्रहण करके संगीत और नृत्य की परम पावन गंगा इस वसुन्धरा पर बहा दी। संगीत और नृत्य की इसी गंगा को ब्रज संस्कृति में 'रास' कहते हैं।*

*कृष्ण लीला का सम्पूर्ण भारत में अधिकाधिक प्रचार हुआ। गुजरात के गरबा नृत्य में रास की स्पष्ट छाया आज भी दृष्टिगोचर होती है।*

***मुख्य शब्द***

*ब्रज संस्कृति, लीलाभूमि, रसिकशिरोमणि महारास, ब्रजबालाएँ, दंडरासक, तालरासक, हल्लीसक, नर्तनातुर, भक्तिमय वातावरण, नाट्य अभिनय।*

*रूकैय्या*

## प्रस्तावना

सनातन काल से ही भारत संगीत नृत्य, काव्य, शिल्प और नाट्य का जनक रहा है। हमारे बेद तथा शास्त्र ग्रन्थ हमारी अमूल्य निधि है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण 'भरतमुनि' प्रणीत 'नाट्यशास्त्र' है। ब्रह्मा ने हम प्राणियों के मनोरंजनार्थ चारों वेदों त्रक से पाठ, साम से गायन, यजु से अभिनय और अथर्व से रस लेकर संस्कृत भाषा में पंचमवेद 'नाट्यशास्त्र' का प्रणयन किया। इसी प्रकार हमारे पूज्य आचार्यो, जोकि भगवान कृष्ण के अनन्य उपासक थे, श्रीमद–भागवत पुराण से प्रेरणा, अष्टछाप से गायन, अनुभव कलाशिल्पियों से अभिनय, रससम्राट रसिकशिरोमणि भगवान कृष्ण के जीवन वृत्त से रस ग्रहण करके संगीत और नृत्य की परम पावन गंगा इस वसुन्धरा पर बहा दी। संगीत और नृत्य को इसी गंगा को बृज संस्कृति में 'रास' कहते हैं।

रास नृत्य का उल्लेख भरत मुनि ने ईसा की प्रथम शताब्दी में अपना ग्रन्थ 'नाट्य शास्त्र' में 'रासक' नाम से किय है। नटनागर भगवान श्री कृष्ण को रास नृत्य का प्रर्वतक माना गया है। श्रीमद भागवत् में रास के विषय में लिखा गया है कि गोपगनाओं के मण्डल से मण्डित होकर योगेश्वर श्री कृष्ण ने दो–दो गोपियों के मध्य एक–एक श्री कृष्ण के रूप में सब गोपियों के कण्ठ में हाथ डालकर रास किया था। रास को परम रस का समूह माना जाता है अथवा रस ही रास है।

रास नृत्य के कुछ विद्वानों का मत है कि वर्तमान रास का उद्‌गम स्थान ग्राम करहला में कदमखण्डी के निवासी घमंडदेवजी से प्रारम्भ हुआ। 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में घमंडदेवजी सरोवर की मिट्‌टी से कृष्ण की विविध झांकियों का निर्माण कर हर क्षण लीलामग्न रहकर उन मूर्तियों को जल में प्रवाहित करते थे। महाप्रभु की इच्छा से घमण्डदेवजी ने रास का आयोजन किया। तानसेन, बैजूबावरा जैसे प्रसिद्ध कलाकारों के गुरू स्वामी हरिदास जी ने राग, ताल, पद की रचना द्वारा रास को मनोहारी कर्णप्रिय और दर्शप्रिय स्वरूप प्रदान किया। इन्ही महापुरूषों ने रास की परम्परा जीवित रखने के लिए कई शिष्य तैयार किए और ये समय–समय पर रास का आयोजन करते रहे। इनके काव्य आज भी विद्वानों के पास सुरक्षित है। रास नृत्य के जगह–जगह प्रचार का श्रेय नारायण भट्‌ट को दिया जाता है। नारायण भट्‌ट दक्षिण के विद्वान संत थे जिन्होने अपने भ्रमण काल में ब्रज के रास से प्रभावित होकर अपना सम्पूर्ण जीवन रास के प्रचार में व्यतीत किया।

रास के मुख्य रूप से दो भेद– महारास और नित्य रास माने गये हैं। महारास में माधुर्य के साथ ऐश्वर्य का समन्वय भी रहता है किन्तु नित्य रास में यह बात नहीं होती है। महारास में जितनी गोपिकाएं होती है उतने ही कृष्ण होते है किन्तु नित्य रास में केवल एक कृष्ण होता है और राधा आदि अनेक ब्रजबालाएँ होती है। भगवान की लीलाओं के भी तीन भेद बताए हैं– ब्रज, वन और निकुंज।

उत्तर प्रदेश का रास नष्त्य, महाराष्ट्र का टीपरी नृत्य, गुजरात का डांडिया तथा तमिलनाडू का कोल्लाटम रास की ही विभिन्न शाखाएँ है इनके तीन भेद हैं।

**तालरासक नामस्याच्च त्रिधा रासकस्मृतम,**
**दंडरासकैकतु तथा मंडलरासकम्।**

**प्रथम भेद**

लय को प्रधान रखते हुए निश्चित तालों पर बल देकर नृत्य करने को 'तालरासक' कहते हैं।

**द्वितीय भेद**

डंडा अथवा लकड़ी हाथों में लेकर परस्पर बजाते हुए नृत्य– प्रदर्शन को 'दंडरासक' कहा जाता है यह नृत्य ग्वालाओं (अहीरों) में आज भी प्रचलित है इसका लोकनृत्यों में महत्त्वपूर्ण स्थान है।

**तृतीय भेद**

स्त्री पुरूष का समूह गोलाकार में (मंडल बनाकर) नृत्य करता है इसे 'मंडलरासक' कहा जाता है। रास नृत्य में इसी की प्रधानता है। संस्कृत के प्राचीन ग्रन्थों तथा भरतनाट्यम में 'हल्लीशक' नाम का उल्लेख आता है जो विद्वानों की सम्मति में इसी रास नृत्य का पर्यायवाची है। हलीसक रास नृत्य का पौराणिक नाम है श्रीमद् भागवत महापुराण के दशम स्कंध में यमुना–पुलिन पर भगवान श्री कृष्ण ने रास का आयोजन किया, जिसे 'महारास' कहा गया है। भगवान श्री कृष्ण द्वारा अपने नृत्य कौशल से हर गोपिका के साथ नृत्य करने का वर्णन श्रीमद भागवत महापुराण में है। गोपिकाओं के मंडल में योगेश्वर भगवान कृष्ण द्वारा वेणु वादन का भी उल्लेख है।

**रासोत्सव संप्रक्तो, गोपिमंडल मंडितः,**
**योगेश्वर कृष्णोऽयं तासां महये द्वयोः द्वयोः।**
**प्रविष्टेन गृहीतेन कंठे स्वनिकरं स्त्रियः।।**

**रास प्रंसग**

रास में श्री कृष्ण परमात्मा का और गोपियाँ आत्मा का प्रतीक होती हैं रास के द्वारा परस्पर भाव–विभोर होने की भावना को व्यक्त किया जाता है। रास विशेषतः लास्य प्रधान होते है रास के प्रारम्भ होने से पूर्व प्रेक्षकगणों को सावधान करने के लिए मृदंग बजाया जाता है। पहले बोल को 'नट' कहते है, उसके पश्चात् दो सूत्रधारियाँ मधुर कण्ठ से आलाप लेती है आलाप पूरा होते ही फिर से मृदंग पर संचार बोल बजाया जाता है पुनः एक बार आलाप गाया जाता है वन्दना समाप्त होते ही प्रेक्षक वर्ग के बीच में से वृन्दा नाम की राधा की सखी नृत्य करती हुई नृत्य मंडप में प्रवेश करती है और जपे जपे मन जपय वृन्दे तथा नृत्य द्वारा ही वृन्दा सखी वृन्दावन का मनोहारी वर्णन करती है।

इस प्रकार रास का प्रारम्भ होता है महारास, कुंज–रास तथा बसंत–रास तीनों की शुरूआत वृन्दा के नृत्य से ही होती है। परन्तु तीनों में प्रत्येक गोपी श्री कृष्ण के साथ नर्तनातुर होती है और एक गोप तथा एक गोपी साथ मिलकर नृत्य करते हैं। कृष्ण के साथ रास खेलते खेलते राधा तथा अन्य गोपियाँ गर्व का अनुभव करती है। कृष्ण इस सूक्ष्म गर्व का परिहार करने के लिए रास मंडल से अर्न्तध्यान हो जाते है और राधा तथा गोपियाँ सभी कृष्ण को ढूँढने निकलती हैं और प्रायश्चित करती हैं। तब कृष्ण लौटते हैं और प्रत्येक गोपी के साथ रास खेलते है। इस तरह कृष्ण रूपी परमात्मा से आत्मा के मिलन की उत्कृष्ण सिद्ध होती है। इस प्रकार रास–लीला का भक्तिमय वातावरण वृन्दावन का आभास कराता है। ब्रज की कृष्ण लीला का सम्पूर्ण भारत में अधिकाधिक प्रचार हुआ। गुजरात के गरबा नृत्य में रास की स्पष्ट छाया आज भी दृष्टिगोचर होती है। बंगाल प्रांत के शास्त्रीय नृत्य मणिपुरी का मूल रास ही है रास नृत्य श्रृंगार रस, लास्य अंग व श्रृंगारिक भावनाओं का द्योतक है।

प0 शारंगदेव ने लास्य के दस अंगों का वर्णन किया है– 1. चाली, 2. चालिवड, 3. लढ़ी, 4. सुक, 5. उशेगणा, 6. धसक, 7. अंगहार, 8. ओचारक, 9 विहसी, 10. मन।

रास नृत्य में नृत्य की सम्पूर्ण क्रिया–राग, ताल, नाट्य, अभिनय का सामंजस्य होते हुए भी बड़ा आश्चर्य तथा दुर्भाग्य है कि वर्तमान भारतीय रंगमंच के कलाकार रास से अनभिज्ञ है तथा संरक्षण और आर्थिक आभाव के कारण रास का प्राचीन शुद्ध स्वरूप बिगड़ता ही प्रतीत होता है। अतः कुछ प्रयासों से रास की इस परम्परा को पुनः जीवित किया जा सकता है। संगति की यह शैली भारतीय संस्कृति की अमूल्य देन है। स्थान–स्थान पर रास आयोजन द्वारा इस संगीत शैली को फिर से पुनः स्थापित किया जा सकता है जिससे आने वाली पीढ़ी इस कला से अनभिज्ञ न रहे।

## सन्दर्भ ग्रन्थ

1. प0 सीताराम चतुर्वेदी, भारतीय तथा पाश्चात्य रंगमंच, पृ0सं0–690
2. डा0 शरतचन्द्र श्रीधर परांजपे, संगीत बोध, पृ0सं0– 168
3. डा0 लक्ष्मी नारायण गर्ग, पत्रिका संगत, पृ0सं0– 25, 1983
4. डा0 लक्ष्मी नारायण गर्ग, पत्रिका संगीत, पृ0सं0–29, 1974
5. संगीत रत्नावली, अशोक कुमार 'यमन', पृ0सं0– 468